शोध परिधि
SHODH PARIDHI

साहित्य, कला संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
द्विभाषिक षट्मासिक राष्ट्रीय शोध पत्रिका

Volume : 2 Issue : 3 / 2015 ISSN : 2349-9575

मुख्य संरक्षक
श्रीयुत गोपाल दास 'नीरज'

प्रधान सम्पादक
डॉ. जीत सिंह

सम्पादक
डॉ. मंजू चौहान

उप सम्पादक
डॉ. किशोर कुमार
डॉ. हरिन्द्र कुमार

सह सम्पादक
डॉ. सत्यन्त कुमार
डॉ. कनक कुमार

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. अर्चना सिंह
डॉ. दिनेश चन्द शर्मा

शोध परिधि - प्रेरणा साहित्य समिति हापुड़ (रजि.)-245101
एवं 80 'जी' से पंजीकृत (उ.प्र.) भारत द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

1.	अष्टछापीय कवि परमानन्ददास की भक्ति भावना	डॉ. सुषमा पाल	0
2.	साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय चेतना	डॉ. अर्चना सिंह	1
3.	कविवर गोपालदास नीरज के फिल्मी गीतों में सामाजिक समरसता: एक अनुशीलन	डॉ. जीत सिंह / डॉ. मंजू चौहान	1
4.	भारत में राजभाषा हिन्दी दशा और दिशा	डॉ. स्वर्णलता कदम	2
5.	वेदों में निहित शिक्षक-छात्र संकल्पना	डॉ. दीप्ति वाजपेयी	2
6.	संगीत और विज्ञान : एक अनुशीलन	डॉ. बबली अरूण	3
7.	निर्मला-स्त्री विमर्श की दृष्टि से मूल्यांकन	डॉ. गीता शर्मा	3
8.	समकालीन कविता : जन पक्षधरता की कविता	डॉ. कल्पना दूबे	4
9.	हिन्दी साहित्य में नारी चित्रण	डॉ. मिन्तू	4
10.	कबीर काव्य की प्रासंगिकता	डॉ. गीता सिंह	5
11.	समकालीन चुनौतियाँ और कविता में मेरठ का स्वर	डॉ. रविन्द्र कुमार / डॉ. मौ. असलम	5
12.	21वीं सदी का कलंक : नारी शिक्षा-सुरक्षा	डॉ. शिवानी गोयल	6
13.	बदलते परिवेश में राज्यसभा : एक आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रभात कुमार	6
14.	नैतिकता के अभ्युपगम	नीलम शर्मा	7
15.	प्रभाष जोशी की वैचारिकी पर हिन्द स्वराज का प्रभाव	अमित कुमार	7
16.	वर्तमान परिवेश में बच्चों के मानसिक स्वास्थ हेतु खेलकूद की भूमिका	डॉ. बबलू सिंह	8
17.	भारतीय समाज में वैदिककाल से 12वीं सदी तक स्त्रियों की दशा	डॉ. राजेश कुमार यादव	8
18.	भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नारी का अस्तित्व	सुमित्रा देवी	9
19.	स्त्री के अस्तित्व संघर्ष का सुलगता दस्तावेज : आवाँ उपन्यास	डॉ. कुसुम लता	9
20.	A way of better life through noble eight fold path		
21.	of buddhisth education in revolutionary Impact of Thermal Power on Environment	Dr. Deepa Gupta Kanak Kumar/Shilpi Garg	
22.	Teaching Methodologies For Human Right Education In India	Mohd. Waqar Raza	
23.	Power and need of yoga in the overall development for the school college students	Dheeraj Kumar	

शोध परिधि ISSN-2349-9575
साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
द्विभाषिक षट्मासिक राष्ट्रीय शोध पत्रिका

नैतिकता के अभ्युपगम

नीलम शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग)
कु0 मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बादलपुर

शोध साराँश

सामान्यतः मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह किसी भी कार्य या शास्त्र में कतिपय अभ्युपगम को दृष्टिगत रखते हुए ही प्रवृत्त होता है, जो उस कार्य या शास्त्र के लिए पृष्ठभूमि रूप होते हैं। नैतिकता के संदर्भ में भी यही स्थिति है। नैतिकता की भी कुछ आधारभूत पूर्वधारणाएँ हैं, जिनके अभाव में नैतिक आचरण अर्थहीन हो जाता है। इसलिए भारतीय दर्शन में आत्मा की अमरता, कर्म एवं पुनर्जन्म, ईश्वर का अस्तित्व एवं संकल्प स्वातन्त्र्य को स्वीकार किया गया है। पाश्चात्य विचारक कांट ने भी आत्मा की अमरता, ईश्वर का अस्तित्व और संकल्प स्वातन्त्र्य को नैतिकता की आधारशिला माना है। प्रस्तुत शोधपत्र में नैतिकता के इन्हीं अभ्युपगमों पर विश्लेषणात्मक विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

किसी भी शास्त्र के सुव्यवस्थित अध्ययन मनन के लिए कुछ आधारभूत पूर्वधारणाएँ या अभ्युपगम होते हैं, जिनकी स्वीकृति के बिना वह शास्त्र सम्भव नहीं हो सकता है। ये मान्यताएँ स्वयं सिद्ध और अनिवार्य मानी जाती है। नैतिक चिन्तन से पूर्व भी कतिपय आधारभूत मान्यताओं का स्वीकरण अपरिहार्य है, क्योंकि इनके अभाव में नैतिक जीवन असम्भव और अर्थहीन हो जाता है। नैतिकता का प्रश्न ही असंगत हो जाता है। जब भी कोई नैतिक निर्णय होता है, तब उसका आधार ये अभ्युपगम ही होते हैं, यदि इन्हें असत्य माना जाए तो किसी नैतिक निर्णय का कोई मूल्य नहीं रहेगा। भारतीय चिन्तन में आत्मा की अमरता, कर्म एवं पुनर्जन्म, ईश्वर का अस्तित्व और संकल्प की स्वतंत्रता नैतिकता के मूलाधार हैं। पाश्चात्य विचारक कांट के अनुसार भी नैतिकता की तीन पूर्वमान्यताएँ हैं - 1. आत्मा की अमरता 2. संकल्प की स्वतंत्रता 3. ईश्वर का अस्तित्व। उनके अनुसार ये नैतिकता की आधारशिला हैं, जो तर्कबुद्धि

 ISSN-2349-9575

तर्क द्वारा प्रमाणित नहीं होकर भी, आस्था पर आधारित होते हुए नैतिकता के लिए अनिवार्य है।[1] नैतिकता के इन अभ्युपगम पर संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है

आत्मा की अमरता – नैतिकता के लिए आत्मा की अमरता का सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कर्मों के कर्ता और भोगों के भोक्ता में एकत्व के लिए आत्मा का नित्यत्व परमावश्यक है। क्योंकि नीतिशास्त्र का प्रमुख सिद्धांत है "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।" यदि आत्मा को नित्य माना जाए तो कर्म तो कोई अन्य करेगा और फल किसी अन्य को भुगतना पड़ेगा। इस प्रकार शुभाशुभ कर्मों का कर्ता कोई अन्य व्यक्ति होगा और भोक्ता कोई अन्य व्यक्ति। ऐसा होने पर तो नैतिक आचरण के लिए कोई उन्मुख नहीं होगा, सर्वत्र यथेष्टाचरण को ही प्रोत्साहन मिलेगा। अतः जो व्यक्ति कर्म करे, उसे ही उन कर्मों का फल प्राप्त हो इसलिए आत्मा का अमरत्व नैतिकता की अपरिहार्य पृष्ठभूमि है। इसीलिए भारतीय आचारिक चिन्तन में 'यो यद्वपति बीज' लभते हि स तत्फलम्' को स्पष्टतः स्वीकार किया गया है। भारतीय दर्शन में भोगवादी चार्वाक दर्शन को छोड़कर समस्त दार्शनिक सम्प्रदाय आत्मा की अमरता का प्रतिपादन करते हैं। यद्यपि आत्मा के स्वरूप के सम्बन्धी में उनमें मतभेद है किन्तु प्रायः यह मान्यता है कि आत्मा ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। यह भौतिक शरीर से भिन्न है और उसकी नियन्त्रक है। भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होती है। कांट ने आत्मा की अमरता को मनुष्य नैतिकपूर्णता के लिए आवश्यक माना है। नैतिक पूर्णता के लिए वासनाओं, इच्छाओं तथा प्रवृत्तियों पर पूर्ण विजय होनी चाहिए, जो एक ही जीवन में सम्भव नहीं हो सकती अपितु अनेक जन्मों के सतत प्रयास से साध्य है। अतः आत्मा को अमर होना चाहिए।[3]

कर्म एवं पुनर्जन्म – वैज्ञानिक जगत में तथ्यों एवं घटनाओं की व्याख्या के लिए जो स्थान कार्य कारण सिद्धान्त का है, नैतिकता के क्षेत्र में वही स्थान कर्म सिद्धान्त का है। नैतिकता की मूलभूत मान्यता के रूप में स्वीकृत कर्म सिद्धान्त कर्म और उसके प्रतिफल के अनिवार्य सम्बन्ध को सूचित करता है। प्रो. हिरियन्ना के शब्दों में भी- 'कर्म सिद्धान्त का यही आशय है कि भौतिक जगत की भाँति नैतिक जगत में भी पर्याप्त कारण के बिना कुछ घटित नहीं होता है। यह समस्त दुःख का आदि स्रोत हमारे व्यक्तित्व में ही खोजकर ईश्वर या प्रतिवेशी के प्रति कटुता के भाव का निवारण करता है।[4] इस प्रकार कर्मवाद कर्म का उत्तरदायित्व और उसका नैतिक प्रयोजन मात्र है। कृत कर्म का फल अनिवार्य है, क्योंकि वह अमृत नहीं हो सकता। योगवासिष्ठ में स्पष्ट वर्णन है कि ऐसा कोई पहाड़, आकाश, समुद्र, स्वर्ग आदि नहीं है, जहाँ पर पहुँचकर प्राणी को अपने कृतकर्मों का फल नहीं भुगतना पड़ता हो। पूर्वजन्म में अथवा वर्तमान जन्म में कृत कर्म अवश्य ही फल रूप में प्रकट होता है।[5] अतः व्यक्ति को उसके शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य प्राप्त होता है। ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि उसने जो किया है उसका फल नहीं मिले और जो किया ही नहीं है उसका फल प्राप्त हो जाए। क्योंकि इससे तो कृतप्रणाश और अमृताभ्युपगम का दोष उत्पन्न हो जाएगा। यदि कर्म का कोई नियम ही नहीं हो तो स्वैराचार से विश्व की व्यवस्था ही विशृंखल हो जाएगी। यहाँ नैतिक कृत्यों के अनिवार्य फल भोग के साथ आत्मा की अमरता का सिद्धान्त भी जुड़ जाता है।

कर्मसिद्धान्त की सहयोगी नैतिक मान्यता है– पुनर्जन्म की धारणा। नैतिक दृष्टि से शुभ और अशुभ क्रिया का कर्ता ही उनके परिणामों का भोक्ता भी है। यदि वह इन परिणामों को इस जीवन में नहीं भोग पाता है तो उन परिणामों को भोगने के लिए वह भावी जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार कर्मसिद्धान्त

से पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी फलित होता है। कर्मसिद्धान्त और पुनर्जन्म सिद्धान्त का अटूट सम्बन्ध है। व्यक्ति का वर्तमान जीवन उसके पूर्ववर्ती कर्मों का परिणाम है और वर्तमान जीवन के कर्म उसके भावी व्यक्तित्व के निर्माता हैं। इस प्रकार पुनर्जन्म सिद्धान्त समाज में प्राप्त विषमता की नैतिक व्याख्या करते हुए कर्मसिद्धान्त को औचित्य प्रदान करता है। कर्मवाद के अनुसार शुभाशुभ कर्मों का क्रमशः शुभाशुभ परिणाम होता है, किन्तु वैयक्तिक और सामाजिक अनुभव इसके विरुद्ध भी प्राप्त होते हैं। कोई सच्चरित्र मनुष्य सत्कर्म करते हुए भी निर्धन और दुःखी है, इसके विपरीत कुछ दुष्कर्मी मनुष्य अशुभ और दुष्कर्मों में संलग्न होने पर भी वैभव सम्पन्न और सुखी हैं। इससे तो कर्मसिद्धान्त के औचित्य पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। परन्तु पुनर्जन्म सिद्धान्त कर्मवाद को सर्वथा उचित सिद्ध करते हुए इन विपरीत स्थितियों का कारण उनके पूर्वजन्मों को मानता है। यद्यपि सत्कर्मी के वर्तमान दुःख का कारण उसके पूर्वजन्म के दुष्कर्म हैं, तथापि वर्तमान शुभकर्मों के प्रतिफल स्वरूप वह भावी जीवन में सुख अवश्य प्राप्त करेगा। इसी प्रकार दुष्कर्मी के तत्कालीन सुख उसके पूर्वजन्मों के सत्कर्मों के फल हैं, किन्तु वह वर्तमान के दुष्कर्मों का दुःखद परिणाम आगामी जन्म में निःसंदेह प्राप्त करेगा।

इस प्रकार कर्म और पुनर्जन्मवाद जीवन की न्यायसंगत और नैतिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए मनुष्य को सर्वदा सत्कर्म हेतु प्रेरित करते हैं, क्योंकि यदि वर्तमान जीवन अतीत के कर्मों से प्रभावित है, तो भविष्य वर्तमान कालीन कर्मों से नियंत्रित होगा। फलतः ये सिद्धान्त सदैव सम्यक् आचरण के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

ईश्वर का अस्तित्व - ईश्वर की सत्ता नैतिकता की आवश्यक मान्यता है। दार्शनिक सम्प्रदायों के अनुसार यदि ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाए तो कर्मफल का विधान सम्भव नहीं हो सकेगा क्योंकि जीवों के कर्मानुसार उन्हें शुभाशुभ फल प्रदान करने वाले निष्पक्ष न्यायधीश की आवश्यकता होती है, जो सर्वज्ञ सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान होना चाहिए। इसीलिए भारतीय दार्शनिक परम्परा में सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तत्व के रूप में ईश्वर को स्वीकार करके उसे कर्मफल विधाता या नैतिक नियमों के अध्यक्ष के रूप में माना गया है। वही जीवों का सृष्टा, पालक और संहारक है। कुछ सम्प्रदायों में ईश्वर में विश्वास और उसकी भक्ति उपासना को सांसारिक बंधन से मुक्ति का साधन स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि कुछ विचारक मुक्ति को ईश्वरीय कृपा से ही सम्भव मानते हैं। पाश्चात्य दार्शनिक कांट भी केवल कर्तव्य चेतना से कर्तव्य परायण व्यक्ति को, उसके सद्गुणों के उपयुक्त आनन्द प्रदाता के रूप में सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर को आवश्यक मानते हैं। ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किए विना पूर्णशुभः जिसमें सद्गुण तथा आनन्द दोनों सम्मिलित हैं कि कल्पना साकार नहीं हो सकती।[6] इसी आधार पर नैतिकता के लिए ईश्वरीय अस्तित्व अनिवार्य है। यद्यपि कुछ निरीश्वरवादी दार्शनिक सम्प्रदाय ईश्वरीय अस्तित्व का निषेध करते हैं और कर्मवाद में विश्वास करते हुए भी कर्मफल प्रदाता के रूप ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं। किन्तु बहुमान्य मत यही है कि कर्मफल सिद्धान्त के विधान हेतु ईश्वरीय अस्तित्व अपरिहार्थ है।

संकल्प-स्वातन्त्र्य - नैतिक आचरण के लिए संकल्प की स्वतन्त्रता आवश्यक है। संकल्प स्वातन्त्रय सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य जो कुछ करता है, वह अपने स्वतन्त्र संकल्प या इच्छा से करता है, उसका निर्णायक वह स्वयं है। पाश्चात्य विचारक कांट ने संकल्प स्वातन्त्र्य को निषेधात्मक और विध्यात्मक-द्विविध अर्थों में स्वीकार किया है। निषेध

त्मक अर्थ में संकल्प स्वातन्त्र्य मानवीय संकल्प का बाह्य शक्तियों द्वारा निर्धारित अथवा शासित नहीं होना है, वहीं विध्यात्मक अर्थ में संकल्प का आत्मप्रेरित नियमों द्वारा ही शासित होना है।[3] द्वितीय अर्थ में संकल्प स्वातन्त्र्य का अर्थ स्वच्छदन्ता या स्वैरवृत्ति नहीं है कि मनुष्य जब चाहे और जैसा चाहे वैसा कर सकता है। इस प्रकार बाह्य शक्तियों द्वारा अबाधित और आत्मनियत्रित मानवीय संकल्प ही संकल्प स्वातन्त्र्य है। यह नैतिकता के लिए अपरिहार्य है अन्यथा नैतिक उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य का विचार निरर्थक हो जाता है।

संकल्प-स्वातन्त्र्य के लिए कतिपय शर्तो को अनिवार्य माना गया है, जिनके अभाव में संकल्प की स्वतन्त्रता स्वीकार नहीं की जा सकती।[4]
ये निम्नलिखित हैं-

कर्म करने की क्षमता - मनुष्य किसी कार्य को करने में शारीरिक अथवा बौद्धिक दृष्टि से समर्थ होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो उसे उस कार्य के सम्पादन में स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता।

ज्ञान और उद्देश्य - मनुष्य के वे ही कर्म स्वतन्त्र माने जा सकते हैं जो किसी उद्देश्य के साथ, भली-भांति सोच विचारकर सम्पादित किए जाएँ। किन्तु जो कर्म अज्ञानवश हो जाएँ, उनमें वह न तो स्वतन्त्र है और न ही उनका उत्तरदायी।

विकल्पों की उपस्थिति - संकल्प स्वातन्त्र्य की स्थिति तभी हो सकती है, जब किसी कर्म के कुछ विकल्प हों। जब व्यक्ति किसी कर्म को करने के अतिरिक्त अन्य कुछ कर ही नहीं सकता, तो वह उस कर्म के सम्पादन में स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता है। जब कोई मनुष्य विविध कर्मों में से किसी कर्म विशेष का चयन अपनी इच्छा, सामर्थ्य और उद्देश्य के अनुरूप सोच समझकर करता है, तब ही वह उस कर्म में स्वतन्त्र और नैतिक दृष्टि से उसका उत्तरदायी स्वीकार किया जाता है।

भारतीय नीतिशास्त्र में प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों का उत्तरदायी माना गया है। यह तभी हो सकता है, जब वह कर्म करने, न करने और यथेच्छ रूप से करने में स्वतन्त्र हो। भारतीय चिन्तन में मनुष्य को यह स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए स्वतंत्र कर्ता स्वीकार किया गया है। इस कर्मस्वातन्त्र्य के कारण ही उसके कर्मों को उचित-अनुचित पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि कहना सार्थक है और वह स्वकर्मों के प्रतिफल सुख - दु:खादि का अधिकारी होता है।

यहाँ ध्यातव्य है कि भारतीय आचारशास्त्र के कर्म एवं पुनर्जन्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य का भावी जन्म उसके पूर्ववर्ती कर्मों द्वारा पूर्व में ही निर्धारित है। सब कुछ पहले से ही नियत है। इसलिए यहाँ कर्म स्वातन्त्र्य संभव ही नहीं है, यह मानना कथमपि समीचीन नहीं है। क्योंकि यहाँ कर्मनियम का तात्पर्य जीवन की पूर्ण नियति नहीं है। यहाँ यह माना गया है कि प्रबल इच्छा द्वारा भविष्य की निर्धारित घटनाओं में परिवर्तन लाया जा सकता है। प्रत्येक क्षण में भविष्य व्यक्ति के हाथ में है क्योंकि शुभ कर्म संस्कारों द्वारा अशुभ कर्म संस्कारों को नष्ट किया जा सकता है। उदाहरणत: प्रायश्चित द्वारा पाप से मुक्ति संभव है तथा ज्ञानाग्नि द्वारा संचित कर्मों का दहन किया जा सकता है। इससे कर्म स्वातन्त्र्य या संकल्प स्वान्त्र्य के लिए पूर्ण अवकाश है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मा की अमरता, कर्म एवं पुनर्जन्म, ईश्वर का अस्तित्व और संकल्प स्वातन्त्र्य नैतिकता के लिए अपरिहार्य हैं, क्योंकि इनके अभाव में न तो मनुष्य की नैतिक आचरण में प्रवृत्ति होगी और न ही उसे स्वकर्म के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है।

उपर्युक्त अभ्युपगम में विश्वास के साथ ही वह नैतिक अथवा अनैतिक आचरण के प्रति सजग रहता

है। ये न केवल व्यक्ति की नैतिक आचरण में प्रवृत्ति में सहायक हैं, अपितु वर्तमान अवस्था में कृत श्रेष्ठ कर्म फल का फल प्राप्त नहीं होने पर भी उसे नैतिक पथ से विचलित नहीं होने देते हैं। उसमें यह दृढ़ विश्वास रहता है कि सर्वज्ञ ईश्वर निष्पक्ष रूप से मेरे कर्मों के अनुरूप फल अवश्य प्रदान करेगा। इसीलिए न केवल भारतीय दर्शन में अपितु पाश्चात्य दर्शन में भी इन्हें स्वीकृति प्रदान की गई है।

सन्दर्भ सूची

1. कांट (द आर्ग्युमन्ट्, आव् द फिलोसफर), सी.एस.राल्फ. वेल्कर, रुटलेस एण्डकेगनपाल, लंदन, 1978, पृष्ठ -136
2. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 2.26.71, सम्पादक -जगदीश लाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1984
3. कांट, एस. कोर्नर, पेन्गुइन बुक लिमिटेड हर्मन्डसवर्थ, 1960, पृष्ठ-165
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम. हिरियन्ना, अनु. गोवर्धनभट्ट, मंजुगुप्त और सुखवीर चौधरी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1965, पृष्ठ 787
5. योगवासिष्ठ, 3.95.33-34, सम्पदा